मातृ-भूमि के सेवा व्रतधारी— डॉ० राजेंद्र प्रसाद

सन् १६१० की बात है कि माननीय गोपालकृष्ण गोखले कलकत्ता आये। उस समय राजेंद्र बाबू वकालत की अंतिम परीक्षा पास करने के लिए खान बहादुर सैयद शमसुल हुदा के पास रहकर व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। गोखले ने कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर परमेश्वर दयाल जी के यहाँ से संदेश भेजकर राजेंद्र बाबू को बुलवाया। पहले तो उनको आश्चर्य हुआ कि गोखले जी उनका नाम किस प्रकार जान गये ? फिर ख्याल आया कि उन्होंने जो "बिहारी विद्यार्थी सम्मेलन" में सक्रिय भाग लिया था, उसी का समाचार कहीं गोखले जी ने देख लिया होगा। खैर, वे समय पर गोखले जी से मिले और बातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि उनका उद्देश्य अपनी संस्था 'भारत सेवक समिति' के लिए कुछ देशभक्त नवयुवकों को भर्ती करना है। उन्होंने राजेंद्र बाबू से कहा—"हो सकता है कि तुम्हारी वकालत खूब चले। बहुत आराम और भोग विलास के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सको। बड़ी कोठी, घोड़ा-गाड़ी (तब तक मोटर का प्रचार नाममात्र को ही हुआ था), नौकर इत्यादि चीजें, जो अमीरों के पास हुआ करती हैं, तुमको भी मिल जायें, पर देश का अधिकार भी कुछ नवयुवकों पर होता है। तुम पढ़ने में बहुत अच्छे सिद्ध हुए, इसलिए तुम पर यह दावा और भी अधिक है। मेरे सामने भी शुरू में यही समस्या आई थी। मैं गरीब घर का लड़का था। मेरे घर के लोग बहुत आशा रखते थे कि जब पढ़कर तैयार हो जाऊँगा तो खूब रुपया कमा सकूँगा और सबको सुखी बनाऊँगा। इस कारण जब मैंने उनकी सब आशाओं पर पानी फेरकर देश-सेवा का व्रत लिया तो मेरे भाई इतने दुःखी हुए कि कुछ दिनों तक तो मुझसे बोले तक नहीं। पर बाद में वे सब बातें समझ गये और फिर मुझसे प्रेम रखने लगे। हो सकता है

कि यह सब तुम्हारे साथ भी हो। पर यह विश्वास रखो कि इस प्रकार के सेवा कार्य के परिणामस्वरूप अंत में लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।"

एक ऐसे महापुरुष के कथन का, जिसने स्वयं अपनी अगाध योग्यता और शक्ति मातृभूमि की वेदी पर अर्पित कर दी थी, राजेंद्र बाबू पर बडा प्रभाव पड़ा। यद्यपि उनके हृदय में भी देश भक्ति की भावना आरंभ से ही उठती रहती थीं, पर स्वभाव से ही अत्यंत विनीत होने के कारण उन्होंने पहले अपने बड़े भाई और माता की अनुमति प्राप्त करनी अनिवार्य समझी। इसलिए उन्होंने अपने भाई को निम्न पत्र लिखा—

"मैं आपसे आमने-सामने बात न कर सका। मैं अपने में एक ऊँची और पवित्र भावना का अनुभव कर रहा हूँ। आपको कठिनाई में डालना मेरे लिए शोभास्पद नहीं तो भी मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि तीस करोड़ देशवासियों के लिए आप भी कुछ त्याग करें। गोखले की सोसायटी का सदस्य होना मेरे लिए अनुचित नहीं कहा जा सकता। अच्छा हो या बुरा, परंतु मुझे ऐसा आभास है कि मैं अपने को किसी भी परिस्थिति के अनुकूल बना सकता हूँ। मेरा रहन-सहन भी इतना सीधा-सादा और सरल है कि मुझको कुछ विशेष सुख-सुविधा और आराम नहीं चाहिए। मुझे सोसायटी से जो कुछ मिलेगा, वही मेरे लिए काफी होगा। पर मैं यह स्वीकार करता हूँ कि आपके लिए यह एक बड़ा त्याग होगा। आपने मुझसे बहुत बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधी हैं, वे सब एक क्षण में नष्ट हो जायेंगी। इस विनाशशील जगत् में पूँजी, पद, प्रतिष्ठा सब कुछ नष्ट हो जाता है। जितनी पूँजी जमा होती है, उससे अधिक की इच्छा सदा बनी रहती है, पर प्रसन्नता तो बाहर से नहीं भीतर से पैदा होती है। एक गरीब आदमी अपनी छोटी-सी पूँजी में लखपति की अपेक्षा कहीं अधिक संतुष्ट रह सकता है। हमें गरीब के प्रति घृणा नहीं करनी चाहिए। संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, वे सब गरीब परिवार में ही हुए हैं। शुरू में उनको बहुत कष्ट भोगने पड़े हैं, घृणा की दृष्टि से देखा गया है, किंतु अंत में अत्याचार और घृणा करने वाले धूल

में मिल गये, उनको जानने, पहचानने वाला भी कोई नहीं रहा। पर अत्याचार और घृणा का विरोध करने वालों को लाखों याद करते हैं और वे लोगों के हृदय में बसे रहते हैं। मेरी यदि कुछ भी महत्त्वाकांक्षा है, तो वह यही है कि मैं भारतमाता की कुछ तो सेवा कर सकूँ। गोखले की-सी प्रतिष्ठा, गौरव और प्रभाव किस राजा को प्राप्त हुआ है ? क्या गोखले भी गरीब नहीं हैं ?"

इस पत्र से राजेंद्र बाबू की आंतरिक अभिलाषा और मनोवृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पच्चीस-छब्बीस वर्ष की आयु में इस प्रकार भावी वैभवयुक्त जीवन की समस्त संभावनाओं को त्याग कर सौ रुपया मासिक व्यय लेकर अपनी समस्त शक्तियों को जन-सेवा के कार्यों में व्यय करने को तत्पर हो जाना सामान्य बात न थी। वे कलकत्ता यूनीवर्सिटी की समस्त परीक्षाओं में सर्वप्रथम आये थे। बंगाल के बड़े-बड़े प्रोफेसर और प्रिंसिपल बिहार जैसे "पिछड़ा हुआ" कहे जाने वाले प्रांत के इस विद्यार्थी की प्रतिभा और तीक्ष्ण बुद्धि को देखकर चकित थे। "विद्या और बुद्धि" का दावा रखने वाले बंगाली विद्यार्थी एड़ी-चोटी का जोर लगाकर उसे हरा देने की चेष्टा करते थे, पर वह सदा प्रथम स्थान पर ही खड़ा दिखाई देता था। जिस समय ये कॉलेज में पढ़ रहे थे, उस समय सर जगदीशचंद्र बोस, सर प्रफुल्लचंद्र राय आदि जैसे संसार प्रसिद्ध विद्वान् भी वहाँ पढ़ाने का कार्य कर रहे थे। वे इनकी बुद्धि और परिश्रम को देखकर इनका सम्मान करने लगे थे। श्री प्रफुल्लचंद्र राय ने एक स्थान पर लिखा है—"राजेंद्र बाबू उन विद्यार्थियों में से थे, जिन्हें अध्यापक कभी भूल नहीं सकते।" राजेंद्र बाबू की इन सफलताओं को देखकर घर और बाहर के सभी परिचित व्यक्ति यह विश्वास करते थे कि वे आगे चलकर बहुत उन्नति करेंगे और जिस क्षेत्र में प्रवेश करेंगे अपने गुणों के कारण सर्वोच्च पद प्राप्त कर लेंगे। ऐसे व्यक्ति के लिए "भारत सेवक समाज का सदस्य" बनकर आजन्म गरीबी का व्रत ले लेना एक ऐसी बात थी, जो कुछ दैवी आत्माओं के लिए ही संभव है।

पर भगवान् को राजेंद्र बाबू से कुछ और भी बड़ा काम कराना था। वृद्ध माता और पितृतुल्य बड़े भाई के मानसिक परिताप को समझकर उस समय वे 'भारत सेवक' समाज में तो सम्मिलित नहीं हो सके, पर उसके सात-आठ वर्ष बाद ही उन्होंने गाँधी जी के "अहिंसक सैनिकों" में नाम लिखा लिया और बिना कौड़ी पैसा लिए ही उनको ऐसी कठिन लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी कि धन ही नहीं प्राण देने की संभावना भी उपस्थित हो गई। यह राजेंद्र बाबू का त्याग और बलिदान ही था, जिसने उस समय तक राजनैतिक क्षेत्र में सर्वथा अज्ञात बिहार को प्रथम पंक्ति में ला खड़ा किया और वहाँ वह काम कर दिखाये, जिनकी किसी को आशा न थी। जब हम गाँधी जी द्वारा भारत में स्वाधीनता संग्राम पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी दैव ने पूर्व नियोजित योजना के अनुसार पटेल, राजेंद्र बाबू, नेहरू जी, जमनालाल जी आदि जैसे महामानवों को एक ही समय भारतभूमि में जन्म लेने और संग्राम का संचालन करने को ही भेजा था। यह समझ में नहीं आता कि अगर महात्मा जी को ऐसे अलौकिक प्रतिभाशाली और साथ ही पूरे त्यागी सेनानायक न मिलते, तो लाखों सत्याग्रही-सैनिकों की भीड़ को, जो बिना किसी शिक्षा या अभ्यास के यों ही इकट्ठी हो गई थी। कौन पूर्णरूप से सुशिक्षित सरकारी सैनिकों के मुकाबले में विजयी बनाता ? इसलिए हम तो राजेंद्र बाबू के गोखले के "समाज-सेवक" बनने के बजाय गाँधी जी के असहयोग-संग्राम के सैनिक बनने को दैवी-योजना का कार्य ही समझते हैं।

जन्म और शिक्षा—

राजेंद्र बाबू (सन् १८८४ से १९६३) का जन्म बिहार और जीरादेई गाँव में हुआ था। उनके पिता श्री महादेव सहाय एक सामान्य जमींदार थे, जो अपनी दयालुता और सेवाभाव के लिए आस-पास बहुत प्रसिद्ध थे। उनको आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा पद्धति का सामान्य ज्ञान था और वे बहुत तरह की दवाइयाँ बनाकर लोगों को मुफ्त बाँटा करते थे। उस समय सब जगह

सरकारी अस्पताल और औषधालय तो थे नहीं, इसलिए बाबू महादेव सहाय के स्थान को ही 'अस्पताल' मानकर रोगियों को भीड़ लगी रहती थी। उनकी पत्नी भी बड़ी दयावान् और सहानुभूति रखने वाली थीं वह किसी के कष्ट, पीड़ा को नहीं देख सकती थीं। उनके पास लोग सदैव किसी न किसी प्रकार की सहायता माँगने आते ही रहते थे।

बाल्यावस्था से ही राजेंद्र बाबू पर माता-पिता के इन सद्गुणों का प्रभाव पड़ा और सेवा-भाव का महत्त्व उनके हृदय पर अंकित हो गया। छह-सात वर्ष की आयु में आपको पढ़ने के लिए गाँव के 'मकतब' में भेजा गया, जिसमें एक बुड्ढे मौलवी साहब पढ़ाया करते थे। उस समय वहाँ उसके सिवाय 'शिक्षा' प्राप्त करने का कोई साधन न था। उसमें दो-तीन वर्ष रहकर उन्होंने उर्दू, फारसी का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लिया। राजेंद्र बाबू ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि "मौलवी साहब बहुत अच्छे आदमी थे।" इसी प्रकार 'वकालत' की परीक्षा में प्रथम वर्ष में उत्तीर्ण हो जाने पर उनकी व्यावहारिक शिक्षा के लिए वे सैयद शमसुल हुदा के शागिर्द बने थे और उन्हीं के यहाँ रहते भी थे। उनकी भी प्रशंसा करते हुये राजेंद्र बाबू ने लिखा है कि "एक बार बकरीद के अवसर पर मैं यह समझकर कि संभवतः उनके यहाँ इस अवसर पर गाय की कुर्बानी होती होगी, इसलिए अपने गाँव को चला गया और दो-तीन दिन बाद वापस आया।" वकील साहब ने मेरे चले जाने का कारण पूछा और जब उनको मेरे उत्तर से संतोष नहीं हुआ तो स्वयं ही असली कारण तो समझ लिया और कहने लगे—"मैं समझ गया था कि तुम बकरीद के कारण चले गये थे। तुमने सोचा होगा कि यहाँ गाय की कुर्बानी होगी, इसलिए इस अवसर पर यहाँ नहीं रहना चाहिए। लेकिन ऐसा ख्याल करके क्या तुमने मेरे साथ बेइन्साफी नहीं की ? तुमने कैसे समझ लिया कि मैं तुम्हारी भावना का कुछ भी आदर नहीं करूँगा। तुम तो खास आदमी हो, मेरे घर में कई हिंदू नौकर भी तो हैं। बगीचे का माली हिंदू है, गायों की देखभाल करने वाला भी हिंदू है। क्या मैं उनकी

भावना का ख्याल नहीं रखता हूँ ? उनका दिल क्या नहीं दुखेगा ? तुमको मुझ से पूछना चाहिए था। मेरे घर में अपने हिंदू नौकरों के ख्याल से कभी गाय की कुर्बानी नहीं होती।"

राजेंद्र बाबू ने लिखा है कि—"मुझे अपनी गलती पर काफी दुःख हुआ और यह शिक्षा मिली कि बिना अच्छी तरह जाने किसी के संबंध में कोई धारणा बना लेना बहुत बड़ा अन्याय है।"

इस घटना से हमको भी यह समझ लेना चाहिए कि सज्जन और बुरे लोग सब समाजों में होते हैं। जाति या धर्म के कारण किसी को बुरा या भला नहीं समझा जा सकता। बिहार में आंदोलन करते समय भी राजेंद्र बाबू को सबसे अधिक सहायता मौ० मजरूल हक से मिली थी। उन्होंने 'सदाकत आश्रम' स्थापित किया था, जिसमें अनेक छात्र राष्ट्रीय शिक्षा प्राप्त करते थे। एक दिन उन्होंने खलील नाम के विद्यार्थी को आश्रम से निकाल दिया। यह काफी होशियार लड़का था और उसने संस्कृत तथा हिंदी का अच्छी तरह अध्ययन किया था। हक साहब भी उसे बड़ा प्यार करते थे। वह राजेंद्र बाबू के पास पहुँचा और हक साहब से सिफारिश करने की प्रार्थना करने लगा। राजेंद्र बाबू ने जब हक साहब के पास जाकर खलील की सिफारिश की तो उन्होंने बहुत दुःखी होकर कहा—

"मैं तुम्हारी बात कभी नहीं टालता, किंतु इस समय मजबूर हूँ। तुम नहीं जानते कि खलील ने कितना बुरा काम किया है ? इसीलिए तुम उसकी सिफारिश करने आये हो। मैंने जिस चीज को अपनी जिंदगी का मुख्य उद्देश्य बना लिया है तथा जिसके लिए आज फकीर बन गया हूँ, उसी को इसने ठेस लगाई है। मैंने आज तक की सारी जिंदगी में एकता का काम किया है, उसी में आज भी लगा हुआ हूँ। लेकिन खलील ने आश्रम में रहकर कुछ लड़कों को मुसलमान बन जाने के लिए बहकाया है। आश्रम में जो लड़के रहते हैं, वे मेरे ऊपर विश्वास करते हैं। मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई उनसे इस तरह की बातें करे। मैं जब समझ गया कि यह खलील वैसा नहीं है, जैसा कि मैं इसे समझता था। तुम देखना कि

एक दिन यह हिंदू-मुसलिम झगड़े भी करायेगा। मैं इसे आश्रम में हरगिज़ नहीं रहने दूँगा।"

राजेंद्र बाबू और मजरुल हक दोनों उन महापुरुषों में से थे, जो जातीय द्वेष की क्षुद्र भावना से बहुत ऊपर रहते हैं। भारत के गत पचास वर्षों के इतिहास को देखते हुए हम जानते हैं कि मुसलमानों में मजहबी पक्षपात दूसरी जातियों की अपेक्षा अधिक होता है तो भी व्यक्तिगत रूप से सज्जन पुरुष उनमें भी पाये जाते हैं। और इस संबंध में हमको अपना दृष्टिकोण उदार और संतुलित ही रखना चाहिए।

कुछ दिन सारन और पटना के स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करके राजेंद्र बाबू कलकत्ता में पढ़ने लगे। उन दिनों बंगाल, बिहार, आसाम, बर्मा आदि सब प्रदेशों की एकमात्र यूनीवर्सिटी कलकत्ता में ही थी। वहाँ पर उन्होंने बड़े परिश्रम और मनोयोग से अध्ययन किया, जिससे वे उत्तीर्ण परीक्षार्थियों में सदा प्रथम स्थान पाते रहे।

सादा रहन-सहन और आदर्श विद्यार्थी जीवन—

राजेंद्र बाबू ने अपने समय का विभाजन इस प्रकार किया था कि एक क्षण भी बर्बाद न हो। वे पढ़ने के समय पूर्ण एकाग्रता के साथ पढ़ते थे और खेल के समय उत्साहपूर्वक खेलते थे। उन्हें भाषण देने का भी शौक था और वे विद्यार्थियों की संस्थाओं में प्रायः उपयोगी विचार प्रकट किया करते थे, यह सब होने पर भी उनकी सादगी सर्वोपरि थी, जिसका उदाहरण मिल सकना कठिन है। इस संबंध में उनके जीवन-चरित्र में एक स्थान पर कहा गया है—

"वे सादे कपड़े सादा पहनते थे और सादी जिंदगी बिताते थे। तड़क-भड़क और बनाव शृंगार से इन्हें घृणा थी। चेहरे पर एक अजीब तेज दिखाई पड़ता था। सादे कपड़ों में भी कोई खास आकर्षण छिपा रहता था। जो देखता था इनकी तरफ खिंच जाता था। किसी ने इनकी इस विशेषता को देखकर ही कहा था कि—यह लड़का बड़ा होने पर हिंदुस्तान का बड़ा नेता होगा।"

एक अन्य लेखक ने लिखा है कि "गांधी जी की सादगी, सच्चाई, नम्रता और सेवा-भाव को सबसे ज्यादा उन्होंने अपनाया था। वे बहुत ही सीधे-सादे और भोले-भाले दिखाई पड़ते थे। यदि कोई अनजान व्यक्ति उनको देखता तो कभी यह विश्वास नहीं कर सकता था कि वे इतनी बड़ी विभूति होंगे। वे बिल्कुल एक किसान की तरह दिखाई पड़ते थे। चेहरे तथा रहन-सहन की सादगी को देखकर बहुतों को निराश होना पड़ता था। निराश होने का कारण यह था कि वे राजेंद्र बाबू के विषय में अपने मन में लंबी-चौड़ी कल्पना बनाये रहते थे, पर जब उनका दर्शन करते तो कल्पना और वास्तविकता में जमीन-आसमान का अंतर दिखाई पड़ता। तब वे विचार करने लगते कि क्या यह वही व्यक्ति है, जिसे उसकी महान् सेवाओं के उपलक्ष्य में कांग्रेस की अध्यक्षता और देश के राष्ट्रपति का पद अर्पित किया गया है।"

चंपारन सत्याग्रह और गांधी जी से परिचय—

वास्तव में राजेंद्र बाबू बाहर तथा भीतर से भी पूर्णतः आडंबरशून्य थे। उनको देखकर कोई यह जान ही नहीं सकता था कि ये अपार योग्यता और विद्वता के धनी हैं। वे स्वयं सदैव चुपचाप पीछे ही रहते और अपने विषय में कभी कुछ प्रकट करने की चेष्टा नहीं करते। इसलिए जब लखनऊ कांग्रेस में बिहार के कुछ सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के प्रयत्न से चंपारन के किसानों के कष्ट-निवारण का प्रस्ताव पास हो गया और गांधी जी इस संबंध में जाँच करने को वहाँ पहुँच गये तब तक उनको राजेंद्र बाबू के विषय में कुछ भी पता नहीं लगा। पर बिहार के कार्यकर्ता जानते थे कि अगर इस कार्य को सफल बनाना है तो उसमें राजेंद्र बाबू का सहयोग आवश्यक है। इसलिए पटना पहुँचने पर वे लोग उनको राजेंद्र बाबू के बँगले पर ही ले गये। संयोगवश उस समय वे वहाँ उपस्थित नहीं थे, कार्यवश दो-चार दिन के लिए बाहर चले गये थे। गांधी जी ने भी उस समय तक भारत में कोई कार्य नहीं किया था। थोड़े से ही लोग उनसे परिचित थे। इसलिए राजेंद्र बाबू के नौकर-चाकरों ने भी जो वहाँ उपस्थित थे, गांधी जी की तरफ

विशेष ध्यान न दिया। इस प्रकार एक ऐसा संयोग बन गया कि जो दो आत्माएँ कुछ समय बाद भारतवर्ष के उद्धार में प्रमुख भाग लेने वाली थीं, वे प्रथम प्रयत्न में एक-दूसरे से अपरिचित और असंबद्ध ही रह गईं।

गांधी जी तो अपने कार्यक्रम के अनुसार समय पर चंपारन पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर जाँच का कार्य शुरू करने के पूर्व ही उनको तिरहुत कमिश्नरी के अधिकारी का नोटिस मिला कि उनके काम से शांतिभंग होने की आशंका है, इसलिए वे चौबीस घंटे के भीतर चंपारन से बाहर चले जायें। गांधी जी कभी किसी अन्याययुक्त आज्ञा के सम्मुख सर झुकाते ही नहीं थे, उन्होंने उसी समय इस आदेश को अमान्य कर दिया। पर उनके सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि यदि सरकार उनको पकड़कर जेलखाने में बंद कर देगी तो उसके बाद आंदोलन का संचालन कौन करेगा ? उसी समय राजेंद्र बाबू अपने कुछ साथियों को लेकर गांधी जी के साथ काम करने को आ पहुँचे। वे उस समय भी अपने ठोस सेवा कार्यों के कारण बिहार के निवासियों का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर चुके थे और उनके पीछे चलने को वहाँ की जनता तुरंत तैयार हो जाती थी। इसलिए राजेंद्र बाबू के चंपारन पहुँचने पर ही गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन की योजना बनी और सरकार द्वारा दमन होने की दशा में सत्याग्रहियों के अनेक जत्थे बनाये गये, जिनमें एक का नेतृत्व राजेंद्र बाबू को दिया गया। सर्वप्रथम जत्थे के नेता चौ० मजरूल हक को नियुक्त किया गया, जो एक वृद्ध मुस्लिम सज्जन और एक प्रसिद्ध बैरिस्टर भी थे। हक साहब उस समय जो गांधी जी के अनुयायी बने तो जब तक जीवित रहे कभी किसी कठिनाई से पीछे नहीं हटे और लगातार स्वाधीनता-संग्राम में सहयोग देते रहे।

अब चंपारन की जाँच का काम आरंभ हुआ। राजेंद्र बाबू ही इसमें प्रमुख थे। उन्होंने अपनी वकालत बंद कर दी और कई महीने तक नील की खेती करने वाले अंग्रेज जमींदारों द्वारा गरीब किसानों पर किये जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध लोगों के बयान

लिखते रहे। उधर गोरे जमींदार तो उछल-कूद मचा ही रहे थे। उनमें से एक ने तो यहाँ तक कह दिया था कि अगर गांधी जी मेरी जमींदारी में जाँच करने आयेंगे तो उनको गोली मार दूँगा। अन्य सब कार्यकर्ताओं को भी वे लोग खूब धमकाते थे। पर जब इन बातों की परवाह न करके राजेंद्र बाबू और उनके साथियों ने पाँच-छह महीना परिश्रम करके बीस-पच्चीस हजार किसानों की गवाहियाँ बाकायदा लिखकर तैयार कर लीं, तब सरकार की आँखें खुलीं। बिहार के गवर्नर ने इस मामले की जाँच के लिए एक सरकारी कमेटी नियुक्त की और गांधी जी को भी उसका एक सदस्य बना दिया। गांधी जी के पास तो निलहे गोरों की करतूतों का कच्चा चिट्ठा इकट्ठा ही था। सरकारी कमेटी ने भी किसानों पर अन्याय व अत्याचार होने की बात ठीक मान ली और तब सरकारी आदेश में वह 'तीन कठिया' नामक अन्याय मूलक प्रणाली सदा के लिए बंद कर दी गई। इसके परिणामस्वरूप चंपारन के किसानों की काया पलट हो गई और आज वह प्रदेश भारतीय चीनी-व्यवसाय में प्रमुख माना जाता है।

सत्याग्रह की शिक्षा—

चंपारन में ही राजेंद्र बाबू गांधी जी के निकट संपर्क में आये और दोनों ने एक-दूसरे को भली प्रकार समझ लिया। गांधी जी के साथ रहकर उन्होंने स्वावलंबन और सादगी का एक नया पाठ सीखा। उन्होंने गाँधी जी के व्यवहार को देखकर समझ लिया कि अगर भारत के गाँवों में सुधार का सच्चा कार्य करना है तो कार्यकर्ता को वहाँ देहाती बनकर ही रहना होगा। जब तक वह अपने पुराने कुसंस्कारों को हटाकर हानि-लाभ, आदर-अनादर, आराम-तकलीफ को एक समान समझने न लगेगा, तब तक वह न तो सच्चा सत्याग्रही कहा जा सकता है और न अत्याचार पीड़ितों का विश्वास प्राप्त कर सकता है। उसे अपने निजी और सार्वजनिक जीवन में एक-सी सच्चाई का व्यवहार करना होगा और झूठे बड़प्पन अथवा आरामतलबी के जो दोष भीतर घुस गये हैं, उन

सबको निकाल बाहर करना होगा। इसके बिना वह जनता का 'सच्चा सेवक' नहीं बन सकेगा।

राजेंद्र बाबू के अधिकांशतः सहकारी वकील ही थे और वे सत्याग्रह की कार्यवाहियों में भाग लेते हुए भी अपने ही ढंग से जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे लोग भिन्न-भिन्न जातियों के थे, इसलिए सब अपनी रसोई अलग रखते थे। प्रत्येक के साथ एक ब्राह्मण रसोइया और एक नौकर था और उनका भोजन बनाने का क्रम रात के बारह बजे तक चलता रहता था। यद्यपि वे सब लोग अपना खर्च आप ही करते थे, तो भी अफ्रीका में सत्याग्रह आंदोलन का अनुभव प्राप्त करके भारतवर्ष में उसी समय आये गांधी जी को यह कैसे पसंद आ सकता था ? इसलिए वे प्रायः इन लोगों की आलोचना करते रहते थे। अंत में निश्चित किया गया कि नौकरों को न रखा जाय, सबकी रसोई एक साथ बने और सब भोजनालय के नियमों का ठीक तरह पालन करें। इनमें सब लोग निरामिष भी नहीं थे, पर दूसरों की सुविधा का ख्याल रखकर सबके लिए एक प्रकार की निरामिष रसोई बनाने का निर्णय किया गया। इस व्यवस्था के हो जाने पर खर्च बहुत घट गया, जो समय और शक्ति चौका-चूल्हे में चली जाती थी, वह आंदोलन को तीव्र बनाने में खर्च होने लगी।

एक अन्य घटना मोतीहारी में हुई, जबकि सब कार्यकर्ताओं को एक मकान छोड़कर दूसरे में जाना था। दिन भर आंदोलन संबंधी कामों में फँसे रहने के कारण लोगों को रात के नौ बजे इस काम के लिए छुट्टी मिली। उस समय किसी मजदूर का मिलना संभव न देखकर महात्मा जी ने स्वयं ही सामान ढोना आरंभ कर दिया। यह देखकर राजेंद्र बाबू तथा अन्य सब भी अपना-अपना सामान ढोने लग गये। नये मकान में पहुँचकर स्वयं ही उसे झाड़ू लगाकर साफ किया। इस प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा से लोगों का झूठा अभिमान बहुत कुछ दूर हो गया और वे समझ गये कि अपना काम अपने हाथों से कर लेना छोटेपन का नहीं वरन् श्रेष्ठता का चिह्न है। इस तरह गांधी जी के साथ रहकर राजेंद्र बाबू ने

त्यागमय जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त की और वे सच्चे अर्थों में 'सत्याग्रही' बन गये।

देश के लिए त्याग और कष्ट सहन

राजेंद्र बाबू का जब एक बार गांधी जी से परिचय हो गया तो आजीवन स्थिर रहा और दिन पर दिन सुदृढ़ होता गया। बात यह थी कि राजेंद्र बाबू के भीतर सत्यनिष्ठा की प्रबल भावना थी और उसी का प्रत्यक्ष दर्शन उनको महात्मा जी में हुआ। उसके पहले राजनीतिक आंदोलन आराम कुर्सियों पर पड़े रहने वाले बड़े लोगों के हाथों में था, जो यह भी नहीं जानते थे कि राजनीतिक कार्य के लिए कष्ट सहना पड़ता है, कारागार के भी दर्शन करने पड़ते हैं। दूसरा दल क्रांतिकारी और 'गर्म' लोगों का था, जो तलवार—बंदूक से सरकार की जड़ उखाड़ने में विश्वास रखते थे। राजेंद्र बाबू की प्रकृति इन दोनों बातों के ही अनुकूल न थी। इसलिए सन् १९०६ से ही कांग्रेस से संबद्ध रहते हुये भी वे राजनीतिक क्षेत्र में विशेष प्रगति नहीं कर सके थे, पर गांधी की राजनीति भिन्न थी। वे देशवासियों के कष्टों और उन पर होने वाले अन्यायों का विरोध करने के उद्देश्य से सरकार का विरोध करते थे और साथ ही उस संबंध में कुछ रचनात्मक कार्य भी करते जाते थे। यह मार्ग उक्त दोनों मार्गों की अपेक्षा स्थायी और देश को आगे बढ़ाने वाला था। इसलिए राजेंद्र बाबू और उनकी प्रकृति के लोगों को जो देश सेवा के लिए कुछ ठोस काम करना चाहते थे और केवल लच्छेदार भाषणों से संतुष्ट नहीं हो सकते थे यही मार्ग अधिक पसंद आया। इसमें गांधी जी ने धार्मिक-भावना भी जोड़ दी, वे राम का नाम लेकर ही प्रत्येक संघर्ष में आगे बढ़ने लगे, जिससे भारतीय जनता उनके प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुई। राजेंद्र बाबू भी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखते थे, इसलिए गांधी जी की नीति उनको अधिक अनुकूल जान पड़ी और वे किसी भी हानि या कष्ट का ख्याल न करके पूर्णरूप से उसमें संलग्न हो गये।

रौलट एक्ट आंदोलन शुरू होने पर राजेंद्र बाबू ने समस्त बिहार में एक प्रचंड आंदोलन खड़ा कर दिया और एक वर्ष बाद नागपुर में असहयोग का प्रस्ताव पास होते ही उन्होंने अपनी दिन पर दिन बढती हुई वकालत छोड़कर राजनीति को ही अपना मुख्य उद्देश्य बना लिया। बिहार के पुराने सुप्रसिद्ध नेता श्री बृजकिशोर प्रसाद और श्री कृष्ण सिंह आदि कई अन्य लोगों ने भी वकालत छोड़ दी और सबने राजेंद्र बाबू के नेतृत्व में बिहार में जाग्रति उत्पन्न करने का प्रयत्न आरंभ कर दिया। असहयोग आंदोलन के अंतर्गत 'स्कूल छोड़ो' आंदोलन में हजारों विद्यार्थियों ने भी शिक्षा-संस्थाओं का बहिष्कार कर दिया था। इसलिए पटना में "बिहार विद्यापीठ" के नाम से एक राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना की गई, जिसमें विद्यार्थियों को राष्ट्र की भावना और आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा दी जाने लगी। इसके साथ ही कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाने, 'तिलक स्वराज्य फंड' में एक करोड़ रुपया जमा करने तथा बीस लाख चर्खे चलाने का कार्यक्रम भी आंरभ किया गया। राजेंद्र बाबू ने इनकी पूर्ति में भी उत्साहपूर्वक भाग लिया। उन्होंने प्रांत में इतनी अधिक जाग्रति उत्पन्न कर दी कि इन सब कार्यों में बिहार का जितना भाग था, वह समय के भीतर ही पूरा हो गया। सफलता की दृष्टि से भारत में बिहार का नंबर दूसरा रहा।

इसके बाद तो जितनी बार आंदोलन छिड़ा राजेंद्र बाबू ने सबमें आगे बढ़कर भाग लिया। साथ ही उन्होंने गांधी जी के प्रति अपनी निष्ठा में तनिक भी अंतर नहीं आने दिया। देशबंधु दास तथा मोतीलाल जी ने सन् १९२३ में ही कांग्रेस से मतभेद हो जाने पर पृथक् स्वराज्य पार्टी बनाई, अन्य लोग भी गांधी जी के किसी कार्य से सहमत न होकर अपना एक अलग ही राग अलापने लगते थे, पर राजेंद्र बाबू ने गांधी जी के आदेशों का सदैव पूर्णतः पालन किया। उनका बिहार में अधिक प्रभाव था कि अन्य प्रांतों के मुकाबले में उस प्रांत में स्वराज्य पार्टी को बहुत ही कम सफलता मिली। फिर जब गांधी जी ने जेल से छूटकर कांग्रेस में इस प्रकार

के मतभेद को हानिकारक समझकर स्वराज्य पार्टी वालों को कौंसिल प्रवेश की अनुमति दे दी और स्वयं संगठन तथा रचनात्मक कार्य में लगे तो राजेंद्र बाबू उनके साथ ही रहे। राजेंद्र बाबू का हार्दिक विश्वास था कि रचनात्मक कार्य से ही राष्ट्र की इमारत सुदृढ़ होती है। कौंसिल प्रवेश से उसकी शक्ति बँट जाती है, इसलिए आपने बिना और किसी तरफ ध्यान दिये बिहार में कांग्रेस कमेटियाँ स्थापित करने, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार करने, खद्दर तैयार कराने में ही अपनी सारी शक्ति लगा दी। उन्हीं के परिश्रम से बिहार में दूसरे सब प्रांतों की अपेक्षा अधिक सस्ती खादी बनने लगी।

खद्दर के प्रचार बढ़ाने के लिए आपने दक्षिण भारत में भी भ्रमण किया था। उनके इन कार्यों की प्रशंसा गांधी जी प्रायः किया करते थे। एक खादी ही नहीं, बिहार में जितनी भी राजनैतिक और सामाजिक प्रवृत्तियाँ चलती थीं, उन सबमें राजेंद्र बाबू का हाथ रहता था और लोग स्वयं आग्रह करके उनको प्रत्येक संस्था में सम्मिलित करते थे। यद्यपि वे स्वराज्य पार्टी से पृथक् थे और कौंसिलों में कभी नहीं गये, पर जब स्वराज्य पार्टी को कांग्रेस की अनुमति प्राप्त हो गई तो कौंसिलों के पक्षपाती भी सलाह और सहायता लेने सदा इनके पास आया करते थे। इससे उनके प्रभाव का पता सहज में लग जाता है।

किसान और मजदूरों की सहायता

सन् १९२७ में जब साइमन कमीशन भारत आया तो समस्त भारत में उसका जोर-शोर से बहिष्कार किया गया। उस आंदोलन में लाला लाजपतराय तथा पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे देश पूज्य नेताओं पर लाठियाँ चलाई गईं थीं। उस समय पटना में एक विशेष घटना हुई। कमीशन के आने से पहले ही पटना के पुलिस अधिकारी ने राजेंद्र बाबू से भेंट की और कहा कि यहाँ कमीशन के विरोध में जुलूस आदि न निकाला जाय। राजेंद्र बाबू ऐसी बात किस तरह मान सकते थे ? तब इन्स्पेक्टर जनरल ने कहा कि आप शांतिमय तरीकों से ही विरोध प्रदर्शन करें। एक तरफ विरोध

करने वाले रहें और दूसरी तरफ स्वागत करने वाले। आपस में छेड़-छाड़ न की जाय। कुछ सोचकर राजेंद्र बाबू ने इस बात को मान लिया क्योंकि वे जानते थे कि इस तरह हमारा उद्देश्य और भी अच्छी तरह पूरा हो सकेगा। बस, जिस समय कमीशन पटना पहुँचा २५-३० हजार जनता काले झंडे लेकर एक तरफ खड़ी थी और स्वागत करने वाले केवल डेढ-दो सौ थे। उनमें भी बहुत से सरकारी चपरासी और छोटे-मोटे नौकर ही थे। इस प्रकार यह बहुत अच्छी तरह विदित हो गया कि भारतीय जनता कांग्रेस के ही साथ है।

सन् १९३० में कांग्रेस अधिवेशन पं० मोतीलाल जी की अध्यक्षता में कलकत्ता में हुआ, राजेंद्र बाबू ने उनकी कार्यवाही में महत्त्वपूर्ण भाग लिया। उसी समय जमशेदपुर के मजदूरों ने हड़ताल कर दी और खबर आई कि वहाँ की हालत गंभीर है। राजेंद्र बाबू कलकत्ता से सीधे जमशेदपुर पहुँचे और मजदूरों की सफलता के लिए हर तरह से प्रयत्न करने लगे। पर उस समय सरकार कारखानों वालों की सहायता कर रही थी, इसलिए मजदूरों को हारना पड़ा। राजेंद्र बाबू इससे बहुत निराश और दुःखी हुए, क्योंकि वे मजदूरों के पक्ष को उचित मानते थे।

बहुत वर्ष पहले बिहार के अनेक किसान अपने प्रदेश को छोड़कर बर्मा के किसी स्थान में जाकर बस गये थे। इन दिनों उनकी दशा बड़ी शोचनीय हो गई थी। उन्होंने राजेंद्र बाबू के पास अपनी करुण कथा लिखकर भेजी। जमशेदपुर की हड़ताल से छुट्टी पाकर वे बर्मा पहुँचे। उनको अपने बीच में पाकर किसानों की आशालता लहलहा उठी और उन्होंने उनके आदेशानुसार आंदोलन करना आरंभ किया, जिससे आगे चलकर उनकी हालत बहुत कुछ सुधर गई।

इस प्रकार राजेंद्र बाबू केवल स्थानीय कांग्रेस आंदोलन का ही संचालन नहीं करते थे, वरन् देश में जहाँ भी सहायता करने का अवसर और आवश्यकता उपस्थित होतीं, वहीं पहुँचकर उसमें सहयोग देते। यद्यपि दमा की बीमारी के कारण वे प्रायः अस्वस्थ हो

जाते थे और अधिक भ्रमण करने से बीमारी बढ़ भी जाती थी, पर वे इसका बहुत ख्याल न करके कर्तव्यपालन से कभी पीछे नहीं हटे। सरदार पटेल के चरित्र में भी हमने पढ़ा है कि उनको पेट में भयंकर दर्द होने का रोग था, पर वे उसकी चिंता न करके बारदोली सत्याग्रह जैसे बड़े-बड़े आंदोलनों का भार अपने सिर पर उठाया करते थे। राजेंद्र बाबू और सरदार पटेल को इन्हीं भयंकर बीमारियों को लेकर सरकार से संघर्ष करना और बार-बार जेल जाना पड़ता था। जेल की कठिनाइयों और खराब खान-पान के कारण इन दोनों नेताओं के स्वास्थ्य को और भी हानि पहुँची और एक-दो बार उनकी दशा ऐसी खराब हो गई कि मृत्यु का भय जान पड़ने से सरकार ने उनको जेल की मियाद पूरी होने से पहले ही छोड़ दिया।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

इन महापुरुषों की कथा को पढ़कर हम सब बहुत कुछ सीख सकते हैं। हमारे कितने ही भाई तो सार्वजनिक सेवा अथवा किसी अन्य परमार्थ कार्य में कठिनाइयों का ख्याल करके किसी तरह का सहयोग देने में ही आनाकानी किया करते हैं और यदि किसी की प्रेरणा से कुछ सेवा-कार्य करने भी लगे तो जहाँ अपनी कुछ हानि होती देखते हैं कि तुरंत पीछे हट जाते हैं। पर राजेंद्र बाबू, पटेल, जमनालाल बजाज आदि ने देश-सेवा के मार्ग में किसी भी कष्ट या हानि की परवाह न की। उन्होंने अपने स्वास्थ्य तक को खराब कर लिया, पर जिस कार्य की प्रतिज्ञा की थी, उससे मुँह न मोड़ा। राजेंद्र बाबू जेल में इतने अधिक बीमार हो गये कि बेहोशी आ जाती थी। इस पर सरकार ने उनको पटना के सरकारी अस्पताल में रखा। उस समय किसी ने झूठी रिपोर्ट कर दी कि वे अस्पताल से ही आंदोलन का संचालन कर रहे हैं। इस पर उनको पुनः जेल भेज दिया गया। पर जब हालत फिर खराब हो गई तो पुनः अस्पताल भेजे गये और जब वहाँ भी बीमारी में सुधार नहीं हुआ तो उनको छोड़ दिया गया। इसी प्रकार की अस्वस्थ दशा में वे न जाने कितना काम करते रहे और बार-बार जेल भी जाते रहे। इस प्रकार अपने हानि-लाभ का ख्याल बिल्कुल छोड़ देने वाले और

सेवा-धर्म के पालन को ही सर्वोपरि समझने वाले पुरुष ही देश-पूज्य बनते हैं और जनता भी उनके गुणों को समझ लेने पर उन्हें अपना सरताज बनाती है।

कौंसिलों द्वारा किसानों की दशा का सुधार—

सन् १६२६ में कांग्रेस में जो पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास हुआ और सन् १६३० में नमक सत्याग्रह आरंभ किया गया। इन दोनों में बिहार ने राजेंद्र बाबू के नेतृत्व में पूरा-पूरा भाग लिया। सन् १६३४ में आप बंबई में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के सभापति बनाये गए। अपनी अध्यक्षता के समय में राजेंद्र बाबू ने कांग्रेस के ढीले पड़े संगठन को मजबूत बनाने के लिए अनवरत परिश्रम किया और उसमें एक नई जान डाल दी। सन् १६३७ में जब कौंसिल प्रवेश का प्रस्ताव पास कर दिया तो आपने परिश्रम करके बिहार में कांग्रेस दल को पूर्णतया विजयी बनाया। वे स्वयं कौंसिल में नहीं गए, क्योंकि वे इस प्रकार पदों के पीछे पड़ना श्रेष्ठ नहीं समझते थे। आपने अपने सहकारियों को ही कौंसिल में भेजा और उनके जरिये किसानों की दशा का बहुत कुछ सुधार कराया। एक तरफ कुछ उग्र आंदोलनकारियों की प्रेरणा से किसान आंदोलन तीव्र रूप धारण करता जाता था और दूसरी ओर बिहार के प्रभावशाली जमींदार उनकी सर्वथा उपेक्षा कर रहे थे। इन दोनों का समन्वय कर सकना बड़ा कठिन था और मतभेद बढ़ जाने से कितने ही कांग्रेस के ही अनुयायी अलग होकर किसान-सभा आदि के द्वारा जमींदारों से संघर्ष कर रहे थे। उस विषम परिस्थिति में राजेंद्र बाबू ने किसान और जमींदार दोनों का विश्वास प्राप्त करके शांति स्थापित की।

बिहार और संयुक्त प्रांत के मजदूरों में भी उन दिनों बड़ा असंतोष फैला था और कानपुर तथा डालमिया नगर में महीनों से हड़ताल चल रही थी। इन दोनों प्रांतों की सरकारों ने राजेंद्र बाबू से लेबर कमीशन का प्रधान बनकर समस्या को सुलझाने की प्रार्थना की। अस्थिरता के कारण आप संयुक्त प्रांत में तो विशेष

कार्य नहीं कर सके, पर बिहार की समस्या को बहुत कुछ सँभाल दिया।

जब दूसरे महायुद्ध में सरकार ने भारतवर्ष को बिना इसके प्रतिनिधियों की इच्छा के ढकेल दिया और इसके जन-धन का जर्मनी को पराजित करने में उपयोग किया जाने लगा तो कांग्रेस ने इसका विरोध किया। सन् १९४० में ही गांधी जी ने इसके विरुद्ध व्यक्तिगत सत्याग्रह का ऐलान किया और सबसे पहले युद्ध-विरोधी भाषण देते हुए विनोबा भावे जेल गये। इसके बाद एक के पीछे एक बड़े-बड़े नेता सरकारी नीति का विरोध करके जेल जाने लगे। राजेंद्र बाबू के भी इसमें भाग लेने को तैयार थे। पर इन 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' करने वालों को चुनाव स्वयं गांधी जी ही करते थे और उन्होंने राजेंद्र बाबू के स्वास्थ्य को देखते हुए, इसमें सम्मिलित होने से रोक दिया। इसके कुछ समय बाद स्वाधीनता संग्राम का अंतिम आंदोलन 'भारत छोड़ो' का समय आ गया। उस पर विचार करने वाली कमेटी में शामिल होने के लिए राजेंद्र बाबू वर्धा गये। वहाँ से पटना लौटते समय आपका दमा बहुत जोर पकड़ गया और फिर ज्वर भी आने लगा। जिस समय ५ अगस्त १९४२ को कांग्रेस की 'वर्किंग कमेटी' का ऐतिहासिक अधिवेशन आरंभ हुआ, उस समय राजेंद्र बाबू बीमारी के कारण यात्रा कर सकने में असमर्थ थे, इसलिए पटना में ही रहकर भावी कार्यक्रम को पूरा करने की तैयारी में लगे रहे।

भीतर का रहस्य तो किसी को मालूम नहीं, पर जब ९ अगस्त को देश भर के कांग्रेसी नेता पकड़ लिए गये, जिनमें राजेंद्र बाबू भी थे, उसके बाद देश में जो उपद्रव हुए, उनमें बिहार अग्रगण्य था। यदि हम कहें कि सन् १९४२ के 'अंग्रेजों ! भारत छोड़ो' विद्रोह का केंद्र इलाहाबाद से लेकर मुंगेर और भागलपुर तक का प्रदेश ही था तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। गुजरात तो गांधी जी और पटेल का कार्यक्षेत्र था और वर्धा में उस समय महात्मा जी और अन्य सब कार्यकर्ता निवास कर रहे थे, इसलिए इन प्रदेशों में भी लोगों ने शानदार संघर्ष किया और बलिदान दिये।

पर यदि कहा जाय कि समस्त भारत में मिलकर जितना काम हुआ उतना अकेले बिहार तथा उससे मिले हुए बलिया, गाजीपुर, बस्ती आदि दो-चार जिलों ने कर दिखाया तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। बिहार में दमन की पराकाष्ठा हो गई। एक लेखक ने मतानुसार—"उस समय बिहार में गाँव-गाँव में जलियाँवाला बाग बन गया। छोटे-छोटे बच्चों को जेल में बंद कर दिया गया, स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये, विद्यार्थियों पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाई गईं। बिहार सरकार ने जेलों से डकैत और खूँखार कैदियों को छोड़ दिया, ताकि वे जनता पर जुल्म ढायें। भागलपुर जेल में लगभग ढाई सौ कैदियों को गला दबाकर मार दिया गया, क्योंकि वे स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेना चाहते थे। बिहार में जो दमन हुआ उसको शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। फिर भी वहाँ की जनता ने राजेंद्र बाबू के आदेश को मानकर कांग्रेस की योजना के अनुसार ही सब कार्य किया और हद दर्जे के कष्ट सहने पर भी सरकार के सामने मस्तक नहीं झुकाया।"

आत्म-भाव की प्रवृत्ति—

वास्तव में राजेंद्र बाबू उन महामानवों में थे, जो केवल करना या मरना जानते हैं, पर अपने मुख से कभी कोई ऐसी बात नहीं कहते, जिससे उनका बड़प्पन या प्रशंसा झलके। कांग्रेस के उस गांधीवादी युग में भी अन्य कांग्रेसी नेताओं के समूह में वे बिल्कुल सामान्य व्यक्ति की तरह जान पड़ते थे और कितनी ही बार ऐसी घटनाएँ हुईं, जबकि लोगों ने उनको कोई मामूली व्यक्ति समझकर वैसा ही व्यवहार किया। वे स्वयं भी उस तरह रहना नापसंद करते थे। एक बार वे नेहरू जी से मिलने इलाहाबाद गये। रेल में देर लग जाने से ११-१२ बजे रात को आनंद भवन पहुँचे। उस समय घर के सब लोग सोये हुए थे, केवल एक चौकीदार जाग रहा था। उसने कहा कि—मैं नेहरू जी को बुला लाता हूँ, पर उन्होंने उसको मना कर दिया और दालान में ही बिस्तर बिछाकर सो रहे। जब प्रातःकाल उठकर नेहरू जी ने यह देखा तो वे बहुत दुःखी हुए और कहने लगे कि—आपने मुझे जगाने क्यों नहीं दिया ? पर राजेंद्र

बाबू ने यही कहा कि "उसकी क्या आवश्यकता थी, मुझे यहाँ सोने में जरा भी कष्ट नहीं हुआ।"

इस तरह अत्यंत सादगी से रहते हुए भी जब काम का समय आता था तो उनकी कार्यक्षमता और प्रभाव को देखकर लोग दंग रह जाते थे। उन्होंने अपना उद्देश्य एकमात्र कर्तव्यपालन को ही बनाया था। हृदय से सत्य का पालन करते हुए आप 'गीता' की व्याख्यानुसार स्थित-प्रज्ञ श्रेणी में पहुँच गये थे और दुःख-सुख, हानि-लाभ, मान-अपमान को समान समझने लगे थे। यही कारण था कि सरकार से और कभी-कभी अन्य राजनीतिक दलों से इतना संघर्ष होने पर भी उनका कभी किसी से द्वेष या शत्रुता नहीं होती थी। यह देखकर अनेक लोग तो उनको "अजातशत्रु" कहते थे। जब राष्ट्रपति के चुनाव का समय आया तो वास्तव में केवल वे ही एक ऐसे व्यक्ति दिखाई पड़े जो सर्वसम्मति से चुने जा सकें और कोई भी राजनीतिक पार्टी जिनका विरोध न करे।

आप आत्मदर्शी पुरुषों के समान ही सबके दुःख-सुख को अपना-सा ही समझते थे। इस प्रकार की एक घटना का जिक्र उनकी आत्म कथा में भी मिलता है। उन्होंने लिखा है—"मैं बिहार में हिंदू-मुस्लिम दंगों की खबर पाकर अपने गाँव से पटना जा रहा था। चलते-चलते पुत्र-वधू के देहांत का समाचार आया। घर के भीतर गया तो बच्चे चिल्ला रहे थे और स्त्रियाँ रोना-पीटना कर रही थीं। मेरा लड़का मृत्युंजय स्त्री की बीमारी की खबर आने पर पहले ही उसके पास चला गया था। मैं पटना जाकर हिंदू-मुस्लिम दंगों को रोकने की चेष्टा करता रहा। वहाँ इतने लोग मारे गये थे तथा इतने घरों में शोक और कोलाहल था कि मेरा निजी शोक एक प्रकार से शरमाकर दब-सा गया।"

हमारे धर्म ग्रंथों में जनक, बुद्ध, अशोक आदि ऐसे महापुरुषों का जिक्र है, जो राजपाट का उपभोग करते हुए भी कभी उसमें लिप्त नहीं हुए। उन्होंने गृहस्थ का पालन भी धर्म-कर्तव्य की दृष्टि से किया और जब आवश्यकता जान पड़ी तो उसे त्यागते हुए भी विलंब न लगाया। राजेंद्र बाबू भी ऐसी ही मनोवृत्ति के मनुष्य थे।

घर वालों के प्रेम और अपने कर्तव्य की दृष्टि वे आजन्म उनका पालन भी करते रहे और जब देश की पुकार सुनाई पड़ी तो उनका ख्याल छोड़कर उसमें कूद पड़े। ऐसे ही व्यक्ति जीवनमुक्त समझे जाते हैं और हम सबका कर्तव्य है कि इस आदर्श को सम्मुख रखकर जितना हो सके, उसे प्राप्त करने की चेष्टा करें। मानव जीवन की सार्थकता इसी में है।

मातृभाषा के प्रचारक—

देश सेवा की तरह ही राजेंद्र बाबू मातृभाषा के भी सेवक थे। उनके आरंभ में परंपरागत रूप में उर्दू-फारसी ही पढ़ाई गई थी, इसलिए एम० ए० तक वही क्रम चलता रहा। पर उसके पश्चात् कलकत्ता में रहते हुए उनको यह ख्याल आया कि हमारा कर्तव्य मातृभाषा की उन्नति करना भी है, इसलिए बी० ए० में आपने हिंदी को एक विषय के रूप में ले लिया। उस समय कलकत्ता के कॉलेजों में हिंदी की शिक्षा का कोई अच्छा प्रबंध न था, पर इस बात का ख्याल न करके, आपने हिंदी से दूर रहना एक भर्त्सना योग्य कार्य समझा और उर्दू को छोड़कर उसी का अध्ययन करने का निश्चय कर लिया। परिचितजनों ने यह भय भी दिखाया कि ऐसा करने से परीक्षा में ऊँचा स्थान न मिल सकेगा, पर आपने यही उत्तर दिया कि, हम अगर अपनी मातृभाषा भी ठीक तरह से नहीं सीख सकते, तो अन्य विषयों को कैसे सीखेंगे ? बस, आप घर पर ही दत्तचित्त होकर हिंदी अध्ययन और मनन करने लगे और अपने परिश्रम के बल पर बी० ए० में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके दिखा दिया।

राजेंद्र बाबू का यह कार्य मातृभाषा हिंदी के प्रति उनकी दृढ़ निष्ठा को प्रकट करता है। उस समय देश में अंग्रेजी का ही बोलवाला था और शिक्षित व्यक्ति निजी पत्र व्यवहार तक अंग्रेजी में करना शान की बात समझते थे। पढ़े-लिखे लोग प्रायः परस्पर अंग्रेजी में ही बातचीत करते थे। ऐसे लोग मामूली अंग्रेजी जानने पर भी उसी को प्रधानता देते थे और हिंदी को एक पिछड़ी हुई भाषा की दृष्टि से देखते थे। पर राजेंद्र बाबू ने इस मनोवृत्ति में हीनता और दासता का अनुभव किया और अंग्रेजी के बहुत बड़े

ज्ञाता होते हुए भी हिंदी को प्रधानता दी। वे कलकत्ते की "हिंदी साहित्य परिषद्" में भाग लेते रहते थे। इस संस्था में उनका परिचय पं० गोविंद नारायण मिश्रा, श्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे, श्री पराडकर जी आदि हिंदी के प्रसिद्ध विद्वानों से हुआ और वे भी हिंदी के प्रचार में पूरा सहयोग देने लगे। वे "साहित्य-परिषद्" में प्रायः निबंध आदि लिखकर सुनाते और वहाँ होने वाली वाक् प्रतियोगिताओं में भी सदैव भाग लिया करते थे। समाचार पत्रों में भी उनके लेख प्रकाशित हुआ करते थे।

"हिंदी साहित्य-सम्मेलन के साथ उनका संबंध उसके जन्मकाल से ही रहा और प्रथम वर्ष में ही उसकी कार्य समिति के सदस्य नियुक्त किये गये। सन् १९२३ में जब सम्मेलन में अन्य प्रांतों में प्रचार की भावना से, अपना वार्षिकोत्सव को कोकोनाड़ा (मद्रास प्रांत) में करना निश्चय किया गया, तो उसका अध्यक्ष राजेंद्र बाबू को ही बनाया गया। इसके अतिरिक्त दरभंगा में होने वाले बिहार प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन और गुरुकुल काँगड़ी में होने वाले संयुक्त प्रांतीय हिंदी सम्मेलन के भी आप सभापति बनाये गये। इन सब संस्थाओं का संचालन उन्होंने अपने कार्यक्रम में बड़े परिश्रम और योग्यता से किया, जिससे हिंदी की प्रतिष्ठा और प्रभाव में पर्याप्त वृद्धि हुई।

आप हिंदी के एक अच्छे लेखक थे। 'चंपारन में महात्मा गांधी' और "आत्म कथा" उनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं, जिनको उन्होंने हिंदी में ही लिखा। बाद में उनके अंग्रेजी और गुजराती आदि में भी अनुवाद हो गया। आपने बहुत वर्ष तक पटना से "देश" नाम का पत्र प्रकाशित करके बिहार में हिंदी का प्रचार तथा संगठन किया। आरंभ में इसका संपादन भी आप ही करते थे। अन्य उपायों से भी जब कभी अवसर मिला आपने सदैव हिंदी की उन्नति की चेष्टा की।

भारत के विभिन्न प्रांतों में हिंदी का प्रचार करके उसे वास्तविक रूप से राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने की उनकी हार्दिक अभिलाषा थी और इसलिए राजनैतिक आंदोलन में व्यस्त

रहते हुए भी वे इस संबंध में विचार और चर्चा किया करते थे। सन् १९३८ में जब उनके ऊपर कांग्रेसी सरकारों के निरीक्षण का भार भी था, उन्होंने हिंदी के बहुत बड़े प्रचारक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में लिखा था—

"हिंदी राष्ट्रभाषा है, इसलिए राष्ट्र के नाते हिंदी प्रेमियों का कर्तव्य है कि हिंदी प्रांतों में इसका प्रचार करें। इस प्रकार के प्रचार के लिए जो कुछ काम किया गया है, उससे न तो हमें शर्मिंदा होना है और न किसी प्रकार का क्षोभ करना है। जो काम हुआ उसका फल भी यथेष्ट मिला है और यदि आज तक पूरी तरह सफलता नहीं मिली है तो उसका कारण हमारी राष्ट्र-भावना की कमी है। मद्रास प्रांत में, जहाँ की भाषा हिंदी से बिल्कुल भिन्न है, इस संबंध में सबसे अधिक उत्साह देखा जाता है, क्योंकि वहाँ के शिक्षित वर्ग में बहुत से लोगों ने यह समझ लिया है कि राष्ट्र के लिए राष्ट्र भाषा आवश्यक है और वह भाषा हिंदी ही हो सकती है। आप जानते होंगे कि इधर कई वर्षों से उस प्रांत के हिंदी प्रचार का सारा खर्च वहाँ के लोगों से ही मिल जाता है और उत्तर भारत से धन नहीं भेजा जाता। मैं समझता हूँ कि इसी प्रकार अन्य अहिंदी प्रांतों में भी कुछ दिनों तक काम करने के बाद हमारा वैसा ही अनुभव होगा और वहाँ भी वहीं के लोग सारा भार अपने ऊपर ले लेंगे। इसमें अगर कुछ विलंब होता है तो हमको न तो निराश होना चाहिये और न घबराकर हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना चाहिए।

"हिंदी-प्रचार को मैं भीख की झोली नहीं मानता और न यह मानता हूँ कि इसके पीछे कोई द्वेष बुद्धि है। इसका एकमात्र उद्देश्य है सारे देश के लिए एक राष्ट्र भाषा का प्रचार। किसी भी प्रांतीय भाषा को मिटाने या कमजोर करने की इच्छा किसी के दिल में व स्वप्न में भी नहीं आयी और न आयेगी। हम राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य मात्र कर रहे हैं और उसे करते रहने में ही हमारा और देश का कल्याण है।"

राजेंद्र बाबू हिंदी की हर प्रकार की प्रगति के लिए सदा जागरूक रहते थे। जिस प्रकार उन्होंने उपर्युक्त पत्र में अहिंदी

प्रांतों में हिंदी-प्रचार की समस्या पर विचार किया है, इसी प्रकार एक अन्य पत्र में हिंदी में विदेशी भाषा के शब्दों के प्रयोग करने के प्रश्न पर भी अपने विचार विस्तारपूर्वक प्रकट किये हैं। वे हिंदी-संस्कृत शब्दों का प्रयोग उचित समझते थे तो भी विदेशी भाषाओं के जो शब्द सर्वसाधारण की बोलचाल में अच्छी तरह मिल-जुल गये हैं, उनको हटाना भी नहीं चाहते थे। इस संबंध में उनका निम्न अभिमत काफी महत्त्व का है—

"अनेकानेक हिंदी लेखक भाषा की जटिलता में ही उसकी सुंदरता देखते हैं। हम बहुधा भूल जाते हैं कि सादगी में भी सुंदरता है और ओज भी है। इसलिए हिंदी को किसी भाषा से शब्दों को लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। पर हम यह नहीं भूल सकते कि जहाँ पारिभाषिक शब्दों की जरूरत पड़ेगी, वहाँ हमें अधिकाधिक संस्कृत पर ही भरोसा करना पड़ेगा। यदि उर्दू वाले इसके लिए हमसे कुढ़ते हैं तो हम इससे नहीं डरते। पर हिंदी और उर्दू का झगड़ा केवल इतना ही नहीं है। मैं उसमें कुछ सांप्रदायिकता भी देखता हूँ। यह बात दोनों ओर से हो रही है और इसलिए जटिलता बढ़ती जा रही है। हिंदी के लिए कोई डर नहीं है क्योंकि इसकी नींव मजबूत है। यदि हिंदी वाले दूरंदेशी से काम लें तो हिंदी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है अर्थात् हिंदी का वह रूप जो मैं चाहता हूँ, जिसमें बहिष्कार की नीति से काम नहीं लिया जाता, जिसमें किसी जाति अथवा भाषा के प्रति द्वेष-भाव नहीं है और जो जनता के लिए सुगम और सहज में समझ सकने योग्य है, प्रचलित हो सकता है राष्ट्र भाषा बनने के लिए उसे प्रांतीय भाषाओं के निकट जाना होगा और यह तभी हो सकता है, जब उसमें देशी शब्दों का ही बाहुल्य हो, विदेशी शब्दों का नहीं। पर आज कुछ लोगों के विचार जरूर संकुचित हो गये हैं। जहाँ एक ओर अहिंदीभाषियों को हिंदी सिखाने का प्रयत्न हो रहा है, वहाँ उन लोगों से जो हिंदी के रूपांतर को अपनी भाषा मानते हैं और जो उसे बोलते और लिखते हैं, हिंदी जटिल बनाकर दूर हटाई जा रही

है। मैं इसमें बुद्धिमानी नहीं देखता। पर मुझे विश्वास है कि यह दौर कुछ समय में खत्म हो जायेगा।"

इस प्रकार राजेंद्र बाबू अंतिम समय तक मातृभाषा की हित-चिंता करते रहे। उनके सुझाव निःसंदेह दूरदर्शितापूर्ण थे और आज कट्टरपंथियों की गलतियों के कारण ही हम हिंदी को कई प्रकार के विरोधों में फँसी देख रहे हैं। भाषा एक सदैव विकसित होने वाली चीज है और यदि उसे बंधनों में जकड़ा जायेगा, उसकी शब्द-संपत्ति को निरंतर बढ़ने से रोक दिया जायेगा तो उसका ह्रास अनिवार्य हो जायेगा। प्राचीनकाल में लोक-भाषा रूप में संस्कृत का प्रचार बंद होकर प्राकृत का आविर्भाव, प्राकृत के स्थान में अपभ्रंश और अंत में उसका भी लोप होकर आधुनिक भारतीय भाषाओं का प्रचलन इसी नियम का द्योतक है। देश भेद और काल भेद की दृष्टि से भाषा में सामान्य परिवर्तन होने आवश्यक हैं। उन्हें जबर्दस्ती रोकने की चेष्टा करना अपनी भाषा के साथ भलाई की अपेक्षा बुराई ही माना जायेगा।

विदेशों में भी मातृभूमि की सेवा—

राजेंद्र बाबू की इच्छा आरंभ से ही विदेश-भ्रमण की थी। बी० ए० की परीक्षा देने के बाद आपका विचार इंगलैंड जाकर बैरिस्टरी की परीक्षा देने का हुआ और उसका सब प्रबंध भी हो गया, पर आपके माता-पिता को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने इसका विरोध किया। उस जमाने में विदेश यात्रा धर्म विरुद्ध समझी जाती थी और यह भी ख्याल था कि वहाँ रहने से युवकों में अनाचार की भावना पैदा हो जाती है। यद्यपि राजेंद्र बाबू के लिए किसी को ऐसी आशंका न थी, फिर भी आप माता-पिता के आदेश को किसी दशा में अमान्य नहीं करना चाहते थे। आपके जैसे सहृदय व्यक्ति के लिए माता-पिता ही क्यों, बड़े भाई और अन्य परिचित व्यक्तियों का दिल भी किसी तरह दुखाना स्वीकार न था। इनके इंगलैंड जाने के लिए कुछ विशिष्ट लोगों ने व्यवस्था की थी, उससे आपने एक मित्र को बैरिस्टर की परीक्षा के लिए भिजवा दिया। उस समय इनके पिता बीमार भी थे, इसलिए वे अपना

अधिकांश समय उनकी सेवा-सुश्रूषा में लगाने लगे। थोड़े ही दिन बाद उनका देहांत हो गया।

सन् १९२८ में ऐसा अवसर आया, जब आपको एक मुकदमे के संबंध में विलायत जाना पड़ा। यह मुकदमा असहयोग आंदोलन के पहले से ही चल रहा था और राजेंद्र बाबू वकालत का त्याग करते समय यह वचन दे चुके थे कि इस अपूर्ण मुकदमे के संबंध में आवश्यकता पड़ने पर वे कानूनी सहायता देंगे। सन् १९२८ में यह इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल में पहुँच गया और मुअक्किल के आग्रह करने पर राजेंद्र बाबू को विलायत जाकर वहाँ के अंग्रेजी वकीलों को सारा मामला समझा देने के लिए कहा गया। पर विलायत जाने पर भी आप अपने नियमों का पालन करते रहते थे। उस देश में ठंड के कारण देर तक सोते रहने का रिवाज है, पर राजेंद्र बाबू सदा के अनुसार वहाँ भी बड़े सबेरे उठकर और स्नान करके काम में जुट जाते थे। भारत की तरह वहाँ भी वे शुद्ध खादी की पोशाक ही काम में लाते थे। वे पुस्तकालय में जाकर मुकदमे से संबंध रखने वाली कानूनी किताबों का अध्ययन करते और तब इंगलैंड के बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टरों से सलाह करते। इसीलिए आरंभिक दिनों में तो उनको इंगलैंड के दृश्यों तथा व्यक्तियों को देखने-सुनने का बहुत कम अवसर मिला, पर जब मुकदमे में समझौता हो गया तब आपने इंगलैंड के साथ ही जर्मनी, फ्रांस, इटली, स्विट्‌रजरलैंड, हालैंड आदि कई देशों की सैर की और वहाँ भी भारत के हितार्थ जितना संभव था कार्य किया।

उस समय ऑस्ट्रिया में एक 'अंतर्राष्ट्रीय युद्ध-विरोधी सम्मेलन'' हो रहा था। भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस का भी यही सिद्धांत था। इसलिए राजेंद्र बाबू उक्त सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हो गये। जब सम्मेलन की कार्यवाही पूरी हो गई तो इनको एक सार्वजनिक सभा में युद्ध विरोधी प्रस्ताव पर भाषण करने के लिए निमंत्रित किया गया। पर उक्त प्रस्ताव के विरोधियों ने उस सभा पर आक्रमण कर दिया और राजेंद्र बाबू पर सड़े अंडे और फल फेंककर मारे। इनको कुछ

चोट भी आई, पर इन्होंने इसकी कुछ परवाह न की। इस घटना के कारण समाचार पत्रों में विरोधी दल की बहुत निंदा की गई।

इंगलैंड में आपने भारत के हितैषी व्यक्तियों से भी भेंट की। वहाँ पर कुमारी लिस्टर गरीबों की सेवा का कार्य करती रहती थी और भारतवर्ष से भी उनको बड़ा प्रेम था। जब वे भारत आयीं तो गांधी जी के आश्रम में ही ठहरी थीं। 'गांधी जी की जब गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने इंगलैंड गये, तो कुमारी लिस्टर के घर पर ही ठहरे। राजेंद्र बाबू की उनसे भारत के संबंध में बहुत बातचीत हुई। राजेंद्र बाबू महात्मा जी की सहायिका मीरा बहन की माता लेडी स्लेड से भी मिले और उन्होंने बड़े प्रेम से इनका स्वागत किया। स्विट्जरलैंड में ये योरोप के प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखक श्री रोम्याँरोलाँ से मिले। रोम्याँरोलाँ भारत के बहुत बड़े हितैषी थे और उन्होंने महात्मा गांधी के जीवन के संबंध में एक बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी।

सन् १९२७ में राजेंद्र बाबू लंका भी गये थे। वहाँ उन्होंने सम्राट् अशोक की पुत्री संघमित्रा का लगाया हुआ "बोधिवृक्ष" देखा, जिसके नीचे दो हजार वर्ष से अधिक समय से निरंतर दीपक जलते रहते हैं। उसे देखकर राजेंद्र बाबू को विचार आया कि यदि इसी प्रकार उनके सदाकत आश्रम, पटना में सदैव चर्खा चलता रहे तो बड़ा अच्छा हो। पर यह विचार पूरा न हो सका।

सेवा धर्म के व्रतधारी—

तमाम राजनीतिक कार्यों के बावजूद राजेंद्र बाबू ने जनता की कठिनाइयों के अवसर पर सेवा-कार्य में कभी त्रुटि नहीं की। राजनैतिक आंदोलन में तो जहाँ एक ओर कुछ कष्ट और हानि उठानी पड़ती है, वहाँ दूसरी ओर उसमें विपक्षी के साथ संघर्ष, दाँव-पेंच और ख्याति का भी आकर्षण रहता है। पर जो सेवा कार्य पीड़ित और कष्टों में फँसे लोगों की सहायतार्थ आकस्मिक रूप से किया जाता है, उसमें बहुत परिश्रम करना पड़ता है और नामवरी का लाभ भी कम ही रहता है, पर सच्चे सेवाभावी व्यक्ति उसी को

अधिक महत्त्व देते हैं, क्योंकि वह सांसारिक मनुष्य के बजाय भगवान् की दृष्टि में प्रशंसनीय बनने का साधन है।

राजेंद्र बाबू ने अपने जीवन का लक्ष्य दीन-दुःखी जनों की सेवा सहायता करना ही निश्चित किया था। इसलिए सन् १९१३ में जब गाँधी जी का नाम भी यहाँ कम ही सुनने में आया था। दामोदर नदी की बाढ़ के समय उन्होंने पीड़ित लोगों की सहायतार्थ चंदा इकट्ठा करने से लेकर आवश्यकीय पदार्थ बाँटने तक का कार्य खूब जोरों से किया। उसी समय बिहार की 'पुन-पुन' नदी में भयंकर बाढ़ आई। सैकड़ों मनुष्य बह गये और लाखों बीघा खेती डूब गई। राजेंद्र बाबू ने अपना वकालत का कार्य बिल्कुल बंद कर दिया। उस समय वे दिन भर अपने साथियों को लेकर नाव द्वारा बाढ़-पीड़ितों की रक्षा करते-फिरते और रात्रि को किसी रेलवे स्टेशन या रेलवे लाइन पर रात व्यतीत करते, क्योंकि ये ही स्थान पानी में डूबने से बचे थे। लोगों को उसी समय विश्वास हो गया था कि वे आगे चलकर अवश्य देशोद्धार के कार्य में विशेष भाग लेंगे।

सन् १९२३-२४ में गंगा में बहुत ही भीषण बाढ़ आई, जिसका रिकार्ड अब तक कायम है। उस समय आरा, छपरा, पटना, मुंगेर आदि जिलों में चारों ओर तबाही का ही दृश्य दिखाई देता था। न मालूम कितने गाँव बह गये, लाखों व्यक्ति निराश्रित होकर सड़कों पर आ गये। न मनुष्यों के लिए अन्न बचा, न पशुओं के लिए चारा। उस समय भी राजेंद्र बाबू सब काम छोड़कर गरीबों की सहायतार्थ कूद पड़े। बिहार निवासी तो उस समय संकटग्रस्त होने से अधिक कर नहीं पा रहे थे, इसलिए उन्होंने बंबई और गुजरात से धन संग्रह करके हजारों लोगों की प्राण रक्षा की। इस प्रकार जब कभी जनता पर कोई आपत्ति आई राजेंद्र बाबू सदैव उसकी सहायता के लिए सबसे पहले आगे बढ़े। मनुष्यत्व का यही लक्ष्य है और धर्म का सार भी यही है कि हम कष्ट और आपत्ति के समय अपनी फिकर न करके दूसरों की जितनी सहायता संभव हो निःस्वार्थ भाव से करें। इसका परिणाम यह हुआ कि राजेंद्र बाबू बिहार की जनता

के हृदय में बस गये और लोग उनको देवता की तरह पूज्य-भाव से देखने लगे।

सन् १६३४ के भूकंप की कथा तो ठीक तरह कही जा सकनी कठिन है। गत सैकड़ों वर्षों से जहाँ तक लोगों को याद है और लिखित प्रमाण मिलते हैं, इतना भयंकर और नाशकारी भूकंप भारत में नहीं आया। इसमें उत्तरी बिहार का बहुत-सा भाग एकदम नष्ट हो गया। मुंगेर का पूरा शहर श्मशान बन गया, अन्य शहरों में भी हजारों व्यक्ति अपने ही घरों में दब गये। अनेक जगह जमीन फट कर काले रंग का पानी बाहर निकल आया। अनेक जगह भीतर से बालू निकलकर खेतों में फैल गई। अनुमानतः चालीस-पचास हजार व्यक्ति कुछ मिनटों के भीतर मर गये। जमीन के ऊँचा-नीचा हो जाने से नदियों का बहाव बदल गया और अनेक दूर-दूर के स्थानों में बाढ़ आने का खतरा पैदा हो गया।

जिस समय यह महान् दुर्घटना हुई राजेंद्र बाबू पंद्रह महीने की सजा काट रहे थे। पर जेल में स्वास्थ्य के खराब हो जाने से उन्हें अस्पताल भेज दिया गया था। वहीं पर आपने भूकंप की खबर सुनी। जिस अस्पताल में आप बीमार पड़े थे, उसका भी कुछ अंश फटकर गिर गया। राजेंद्र बाबू ने उसी समय सरकार से और देश से भूकंप-पीड़ितों को सहायता पहुँचाने की अपील की। सरकार ने भी उनको दूसरे दिन (१६ जनवरी को) जेल से छोड़ दिया, यद्यपि उस समय सजा का एक महीना शेष था। बस बाहर आते ही रोग-शैय्या पर पड़े-पड़े उन्होंने पीड़ितों की सहायतार्थ देशव्यापी प्रचार-कार्य आरंभ कर दिया। श्री रवींद्रनाथ, मालवीय जी, गांधी जी के नाम से विदेशों से भी सहायता की अपील कराई गई। राजेंद्र बाबू की भावना को समझकर गांधी जी और जमनालाल बजाज बिहार पहुँचकर सेवा कार्य में संलग्न हो गये। देश के अन्य नेताओं ने भी पूरा सहयोग दिया और इस प्रकार लाखों लोगों को फिर से जीवन निर्वाह के साधन मिल जाने से उनकी रक्षा हो सकी। उस समय राजेंद्र बाबू ने स्वास्थ्य निर्बल होने पर भी जितना परिश्रम किया और सहायता कार्य की सुव्यवस्था की, उसे देखकर उनके

त्याग और तपस्या की छाप समस्त देश पर पड़ गई। लोगों को विश्वास हो गया कि वे उन अनन्य सेवाव्रती महापुरुषों में से हैं, जो बिना किसी प्रकार के स्वार्थ और अहंकार को देश सेवा के कार्य को अपना धर्म कर्तव्य समझकर करते हैं। वे जिस काम को हाथ लगायेंगे, उसे अपनी पूर्ण शक्ति और योग्यता से सफल बनाने का प्रयत्न करेंगे। उनका किसी से ईर्ष्या या द्वेष भाव नहीं है, वे कभी अपने को दूसरों से बड़ा नहीं बतलाते और न उनमें किसी प्रकार के बाह्य सम्मान की भूख है, इसलिए उनके द्वारा आरंभ किये गये सभी कार्य प्रायः निर्विघ्नपूर्ण हो जाते हैं।

कांग्रेस-अध्यक्ष के रूप में सेवा—

यद्यपि राजेंद्र बाबू युवावस्था से ही देश सेवा में संलग्न थे और असहयोग-आंदोलन आरंभ होते ही उसमें भी महत्त्वपूर्ण सक्रिय भाग ले रहे थे तो भी आपका विशेष प्रभाव बिहार में था; अन्य प्रांत के लोगों का उतना अधिक परिचय न था। पर बिहार के भूकंप के अवसर पर, जब विनाश की विशालता को देखकर वहाँ की सरकार भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई थी और तुरंत मारे जाने वालों के अलावा सर्वस्व नष्ट हो जाने के कारण और भी लाखों लोगों के कुछ दिनों में मर-कट जाने की संभावना थी, राजेंद्र बाबू ने अपने साहस, परिश्रम, योग्यता के बल पर उस विकट समस्या को जिस प्रकार सुलझाया, उससे उसका नाम भारत के कोने-कोने में फैल गया और लोग उनकी कार्य शक्ति तथा योग्यता को पूरी तरह समझ गये। इसलिए सन् १९३४ के अंत में कांग्रेस का जो अधिवेशन बंबई में हुआ, उसके अध्यक्ष सर्वसम्मति से आप ही चुने गये।

जिस समय राजेंद्र बाबू कांग्रेस अध्यक्ष हुए, उस समय उसमें पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न हो गया और इसके फलस्वरूप संगठन में ढीलापन आ गया था। राजेंद्र बाबू ने अधिवेशन समाप्त हो जाने के पश्चात् समस्त देश का तूफानी दौरा किया और कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में नवीन स्फूर्ति पैदा की। उस समय वे जहाँ कहीं गये वहीं पर उनका शानदार स्वागत किया गया और लोगों को मालूम

हो गया कि इस समय कांग्रेस में राजेंद्र बाबू ही ऐसे नेता हैं, जिन पर सबको विश्वास है और निराभिमानता तथा निःस्वार्थ भावना के कारण जो सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस संगठन में आपका प्रभाव बहुत बढ़ गया और आपको "कांग्रेस हाई कमान" में सम्मिलित किया गया, जिसमें आप जीवन के अंतिम समय तक कार्य करते रहे।

राष्ट्रपति के पद पर प्रतिष्ठित

राजेंद्र बाबू का रहन-सहन ऐसा सीधा-साधा और ग्रामीण ढंग का था कि अकस्मात् किसी अनजान व्यक्ति को यह अनुभव ही नहीं होता था कि ये देश के इतने प्रमुख नेता हैं। तो भी जब समय आया तो देश ने उनकी शक्ति को समझा और उनकी वैसी ही कद्र की। सन् १९३६ में जब कांग्रेस ने कौंसिल प्रवेश का निश्चय किया तो राजेंद्र बाबू को पार्लियामेंटरी बोर्ड का सदस्य नियुक्त किया गया और सभी प्रांतों में कांग्रेसी उम्मीदवार तथा मंत्रिमंडल सदस्य चुनने में उनका बड़ा हाथ रहा। उनके अथक परिश्रम से प्रायः सभी प्रांतों में कांग्रेस को बहुत अच्छी सफलता मिली और ढाई वर्ष तक शासनारूढ़ रहकर कांग्रेसी अधिकारियों ने यह सिद्ध कर दिया कि अवसर आयेगा तो वे देश का शासन अच्छी तरह चला सकेंगे।

सन् १९४२ के संघर्ष और तीन वर्ष तक सभी प्रमुख कांग्रेस नेताओं के जेल में रहने के पश्चात् जब ब्रिटिश सरकार से समझौता हुआ तो भारत को स्वराज्य दिये जाने का निर्णय हो गया। देश भर में चुनाव किये गये और केंद्र में एक मिली-जुली सरकार स्थापित की गई, जिसमें कांग्रेस की ही प्रधानता थी। उस समय राजेंद्र बाबू को खाद्य विभाग का मंत्री बनाया गया। इसके पश्चात् जब पाकिस्तान और भारत का विभाजन होकर सार्वजनिक चुनाव के आधार पर स्थायी सरकार का निर्माण हुआ तो राजेंद्र बाबू को देश के सर्वोच्च पद राष्ट्रपति के लिए चुना गया।

राष्ट्रपति के पद पर बारह वर्ष से अधिक समय तक रहकर राजेंद्र बाबू ने भारतीय प्रजातंत्र की प्रतिष्ठा को बहुत कुछ बढ़ाया।

विभिन्न देशों के राष्ट्रपतियों तथा शासनकर्ताओं से मेल-मिलाप बढ़ाकर उन्होंने भारत के शासन तंत्र की जड़ को मजबूत किया। वें सदैव अपनी संस्कृति और सभ्यता की रक्षा का पूरा ध्यान रखते थे और विदेशियों से मिलते तथा विदेशों में जाते समय पूर्ण रूप से भारतीय वेषभूषा में ही रहते थे। आपके विचार इस संबंध में कितने व्यापक और सुदृढ़ थे, यह निम्नलिखित उद्‌गारों से प्रकट होता है—

"जिन परिस्थितियों में अनेक संस्कृतियों का नाश हो चुका है, उन परिस्थितियों में पड़कर भी हमने अपना अस्तित्व ही कायम नहीं रखा है, वरन् अपनी बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रतिष्ठा की भी रक्षा की है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हम अपने को स्थिर रख सके, उसका कारण यही है कि हमारी संस्कृति नैतिक आधार पर खड़ी की गई है। यह आधार पर्वत की अपेक्षा भी सुदृढ़, समुद्र की अपेक्षा भी गहरा और आकाश की अपेक्षा भी विशाल है। जिन देशों का नाश हो चुका है, उनकी संस्कृति का आधार जातिभेद अथवा भाषा प्रेम जैसे संकीर्ण तत्त्वों पर था।"

इस प्रकार की भावनाओं को लेकर राजेंद्र बाबू जीवन के अंतिम समय तक राष्ट्र और समाज के उत्थान के लिए सचेष्ट रहे। राष्ट्र ने भी उनको हर तरह से सम्मानित किया और जब तक वे कार्यक्षम अवस्था में रहे, तब तक उनके मुकाबले में किसी ने आगे आने का प्रयत्न नहीं किया। और तो क्या लोक सभा के विरोधी दल वाले भी उनका हृदय से सम्मान करते थे और उनकी निष्पक्षता तथा उदारता में पूरी आस्था रखते थे। राजेंद्र बाबू का जीवन निःसंदेह सब प्रकार से अनुकरणीय रहा और हम देश तथा समाज की सेवा के क्षेत्र में उससे सदैव प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं।

❐ ❐

मुद्रक युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)